ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(9): 727-730
www.allresearchjournal.com
Received: 01-06-2015
Accepted: 05-07-2015

डॉ. सर्वजीत दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत,
मामा बालेश्वर दयाल
राजकीय महाविद्यालय,
कुशलगढ़, बांसवाड़ा,
राजस्थान, भारत

Correspondence
डॉ. सर्वजीत दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत,
मामा बालेश्वर दयाल
राजकीय महाविद्यालय,
कुशलगढ़, बांसवाड़ा,
राजस्थान, भारत

गांधी-दर्शन

डॉ. सर्वजीत दुबे

सारांश
गांधी के जन्मदिवस 2 अक्टूबर को यूएनओ ने "विश्व अहिंसा दिवस" के रूप में मनाने का निर्णय किया। आखिर क्यों जरूरत पड़ी गांधी की? क्योंकि आज वैश्वीकरण के जमाने में लोग एक-दूसरे के नजदीक आ गए लेकिन दिलों की दूरी बनी रही। तन के स्तर पर नजदीक आने से मन की दूरियां समाप्त नहीं होती। इसके लिए सभी का मूल स्रोत एक होना जरूरी है। गांधी को बचपन में ही ऐसा संस्कार मिला, जिसके अनुसार उनकी दृढ़ मान्यता बनी कि सभी एक ईश्वर की संतानें हैं-"ईशावास्यमिदं सर्वं". फिर उनके लिए ईश्वर ही सत्य हो गया और सत्य ही ईश्वर हो गया। यदि सबका मूल उद्गम एक है तो "अहिंसा" अनिवार्यरूपेण और स्वाभाविकरूपेण फलेगी। यह शोध लेख गांधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को आज की सबसे बड़ी आवश्यकता के रूप में देखता है।

कूटशब्द: सत्य, अहिंसा, मनसा, वाचा, कर्मणा, साधन, साध्य

प्रस्तावना
सत्य और अहिंसा जैसा शब्द धर्म के क्षेत्र की याद दिलाता है। व्यक्तिगत स्तर पर किसी निर्जन स्थान में बैठकर ऋषि सत्य और अहिंसा की साधना किया करते थे। ऐसे ऋषियों की वाणी है- "सत्यमेव जयते", [1] 'अहिंसा परमो धर्म: [2] '। भारतीय संस्कृति में जीवन के कुछ ऐसे मूल्य माने गए, जिनके लिए यह जीवन भी न्योछावर किया जा सकता है। सत्य और अहिंसा भी ऐसे ही मूल्य थे। गांधी की विशेषता यह थी कि इन धार्मिक मूल्यों के आधार पर उन्होंने सक्रिय राजनीति की। व्यक्तिगत साधना में उन्होंने जिस सत्य और अहिंसा को पाया, उस सत्य और अहिंसा को राजनीतिक धरातल पर व्यवहार में लाकर दिखाया। अतः "गांधी-दर्शन" जैसा शब्द बहुत प्रचलित हो गया। किंतु शंकराचार्य की तरह गांधी के विचार मौलिक नहीं थे और वे स्वयं भी "गांधी-दर्शन" जैसा शब्द का समर्थन नहीं करते थे। उनकी मान्यता थी कि दर्शन जीवन के छोटे से लेकर बड़े कार्य तक में स्वत: ही प्रस्फुटित होता है। किसी एकांत स्थान पर बैठकर उसे सिर्फ कागज पर लिपिबद्ध नहीं किया जाता।

यह जरूर है कि उनके पारिवारिक संस्कार धर्म-प्रधान थे। धर्म प्रधान विचार के प्रकाश में जब उन्होंने राजनीतिक धरातल पर कदम रखा तो बहुत द्वंद्वों से उन्हें गुजरना पड़ा। मूल कारण यह था कि राजनीति असत्य और हिंसा से ही सफल हो सकती है, ऐसी लोगों की आम मान्यता थी। सत्य और अहिंसा को लेकर राजनीति में उतरने वाला मोहनदास किसी दिन महात्मा बनकर भारत ही नहीं विश्व का भी मार्ग-प्रशस्त करेगा, ऐसा किसी ने सोचा नहीं था।

अपने प्रारंभिक काल में गांधी को लोग न तो व्यावहारिक राजनीतिज्ञ मानते थे और न एक मौलिक दार्शनिक। यहां तक कि भारतीय राजनीति में जब उन्होंने *1916* में प्रवेश किया तो कांग्रेस के गरम दल और नरम दल उन्हें पूरी तरह से अपनाने में असमर्थ थे। क्योंकि वे ब्रिटिश सरकार से सहयोग करने के लिए तैयार थे, अतः गरम दल उनको नहीं पसंद करता था। दूसरी ओर उनकी धार्मिक दृष्टि, सत्य और अहिंसा का सिद्धांत नरम दल वालों के गले नहीं उतर पा रही थी।

पूंजीवादी उनसे इसलिए नाराज थे क्योंकि वे बड़े उद्योगों के खिलाफ थे तो दूसरी और मार्क्सवादी भी उनको नापसंद करते थे क्योंकि वर्ग-संघर्ष की जगह वे प्रेम में विश्वास करते थे।

कट्टर हिंदू उनसे इसलिए नाराज थे क्योंकि उनकी नजरों में वे मुस्लिम तुष्टिकरण कर रहे थे तो दूसरी तरफ कट्टर मुस्लिम भी उनसे नाराज थे क्योंकि उन्होंने घोषणा की थी कि भारत का बंटवारा मेरी लाश पर ही हो सकता है।

गांधी वर्ण-व्यवस्था के हिमायती थे, इसलिए दलित वर्ग उनसे खफा था दूसरी ओर सवर्ण वर्ग भी नाराज था क्योंकि वे मंदिरों में दलितों को प्रवेश करा रहे थे।

संक्षेप में कहें तो हर स्वार्थ वाला व्यक्ति या समूह गांधी से नाराज था किंतु गांधी को जितना बड़ा समर्थन आम जनता का मिला, इतना बड़ा समर्थन विश्व राजनीति में शायद ही किसी को मिला हो। तभी आइंस्टीन जैसे वैज्ञानिक ने कहा कि-"आने वाली पीढ़ियां कभी विश्वास नहीं करेगी की हाड़-मांस का ऐसा कोई पुतला कभी इस धरती पर अवतरित हुआ था।"[3]

आखिर दुबले-पतले गांधी में कौन सा ऐसा बल था, जिसकी बदौलत उन्होंने विश्व की सबसे शक्तिशाली सत्ता के विरुद्ध सफल संघर्ष किया। सूक्ष्म दृष्टि वाले कहते हैं कि वह बल आत्मबल था और सत्य-अहिंसा का बल था। दरअसल गांधी एक परंपरावादी वैष्णव परिवार में पैदा हुए थे, जिस पर जैन धर्म का गहरा प्रभाव था। अतः भारत के दो प्रमुख दर्शन वैदिक दर्शन और जैन दर्शन दूसरे शब्दों में कहें तो ब्राह्मण संस्कृति और श्रमण संस्कृति ; दोनों ने गांधी को प्रभावित किया। अतः उनकी मूल आस्थाओं को जाने बिना उनका सही मूल्यांकन नहीं हो सकता। गांधी का जो दर्शन विकसित हुआ उसका मूल स्रोत वैदिक दर्शन है जिसके दो महान प्रणेता थे- शंकर और रामानुज । शंकर जहां अद्वैतवादी हैं, वहां रामानुज विशिष्टाद्वैतवादी हैं। जहां शंकर ब्रह्म ज्ञान की अनुभूति को अनिर्वचनीय मानते हैं, वहां रामानुज उसको सहज रूप से प्राप्य और ग्राह्य मानते हैं। गांधीजी में शंकर का प्रभाव यदा-कदा दृष्टिगोचर होता है किंतु उनकी भावना रामानुज के अधिक निकट प्रतीत होती है। सृष्टिकर्ता अगम्य है अवश्य, किंतु उसका आभास उसकी सृष्टि में मिल सकता है। वह केवल सृजनहार ही नहीं, तारणहार भी है। हमारी प्रार्थना उसके कानों तक पहुंच सकती हैं, उसकी इच्छा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। गांधी मानते थे कि ईश्वर है, इसलिए हम हैं। ईश्वर सबका पिता है इसलिए उसके पुत्रों को उससे मांगने का अधिकार है। अगर कोई सच्चे हृदय से मांगता है तो वह ईश्वर अवश्य देता है।[4] उसी की कृपा से हमारे जीवन के सारे कार्यकलाप संचालित होते हैं।" ईशावास्यमिदं सर्वं[5] "अर्थात ईश्वर सब जगह है और सब में विद्यमान है- यह वाक्य गांधी के धार्मिक विचारों का मूल आधार है। इस सत्य की अनुभूति का स्रोत तर्क नहीं, आस्था है। यही सत्य अंतिम सत्य है, यही सत्य सार्वभौमिक है और इसके बाहर निकल कर हम यथार्थ की पहचान नहीं कर सकते। इस पृष्ठभूमि में हम कह सकते हैं कि मौलिक

वैदिक भावना से गांधी के सत्य संबंधी विचार प्रस्फुटित हुए।

जब गांधी से पूछा गया कि आखिर ईश्वर है क्या ? तो उन्होंने शंकर की तरह 'नेति-नेति' नहीं कहा, उन्होंने एक सहज तथा बोधगम्य उत्तर दिया -"सत्य ही ईश्वर है". सत्य के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता क्योंकि जो ईश्वर है, वही सर्वशक्तिमान तथा सर्वत्र विद्यमान है और जो शक्ति ऐसी होगी, वह सत्य पर ही अवस्थित हो सकती है। गांधी की नजरों में सत्य ही एक ऐसा तत्व है, जो बदलता नहीं, हमेशा एक ही रहता है और अपरिवर्तनशील है, यही गुण ईश्वर का भी है, इसलिए सत्य ही ईश्वर है। [6] सत्य सर्वशक्तिमान है क्योंकि केवल सत्य ही "है" की सीमा में है, अर्थात् केवल सत्य ही विद्यमान है। गांधी का यह सिद्धांत गीता के द्वितीय अध्याय के 16वें श्लोक-"नासतो विद्यते भावो, नाभावो विद्यते सत:" [7] पर आधारित है। जिसका भाव है-असत्य तो विद्यमान ही नहीं है। फिर अविद्यमान की विद्यमान पर विजय कैसे हो सकती है? इसी बलवती भावना के प्रभाव से गांधी हमेशा निर्भीक और निडर बने रहे। इसी भावना से उनके सत्याग्रह के सिद्धांत का जन्म हुआ।

गांधी का मानना था कि हर व्यक्ति के अंदर सत्य का अंश विद्यमान है और उसको इस सत्य की अनुभूति कराई जा सकती है। जब भी कोई व्यक्ति (अथवा सरकार) बुरा कार्य करता है तो उसके पीछे उसका भ्रम होता है। अपने अंदर मौजूद सत्य के होते हुए भी वह असत्य के प्रभाव में आ जाता है। अगर उसे अहिंसा के माध्यम से इस तथ्य का एहसास करा सकें तो उसे सत्य की अनुभूति होने लगेगी और वह असत्य के मार्ग से हट जाएगा।

सत्य का आग्रह तभी किया जा सकता है जब उसके लिए संभावनाएं विद्यमान हों। गांधी जी का अटल विश्वास था कि ये संभावनाएं हमेशा विद्यमान रहती हैं क्योंकि हर व्यक्ति के अंदर आत्मा होती है जो एक ईश्वरीय अंश है। इसी अंश को उजागर करने की आवश्यकता है। सत्य को असत्य से, बुराई को बुराई से नहीं जीता जा सकता। गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि असत्य को सत्य से और बुराई को भलाई से जीता जा सकता है। इस अवधारणा के पीछे गांधी पर बाइबिल का प्रभाव भी दिखता है, इसके अतिरिक्त रूसो और टॉलस्टॉय ने भी उनकी इस मान्यता को बल दिया। गांधी जीवन भर इस सत्य को आजमाते रहे और स्वयं उन्होंने कहा कि उनकी धारणा कभी भी गलत सिद्ध नहीं हुई, उनके 'सत्य के प्रयोग' ही उनकी आत्मकथा है। [8]

असत्य के विरोध में सत्य का आग्रह कैसे संभव होगा? इस प्रश्न के उत्तर में गांधी जवाब देते हैं हृदय परिवर्तन से। अतः "अहिंसा परमो धर्म:"गांधी की स्वानुभूति थी। सत्याग्रह एक नैतिक विधा है जो अपने आप में पवित्र है। गांधी मानते थे कि परम-साध्य साधन की पवित्रता के बिना नहीं उपलब्ध हो सकता। सत्याग्रह के बिना उस उच्चतम आदर्श की प्राप्ति नहीं हो सकती जिसे गांधी ने अहिंसा का नाम दिया।

किसी व्यक्ति या प्राणी की हत्या न करना मात्र ही अहिंसा नहीं है, बल्कि गांधी की नजरों में अहिंसा तो एक व्यापक नैतिक दृष्टि है, एक ऐसा नजरिया जो प्राणी मात्र के एकत्व को मानकर चलता है। अहिंसा आत्मा की आवाज है, मस्तिष्क से उत्पन्न होने वाला विचार नहीं। कई परिस्थितियां ऐसी हो सकती हैं, जिनमें मनुष्य व्यक्तिगत आत्मरक्षा के लिए मारने-मरने पर उतारू हो जाए, ऐसा व्यवहार अहिंसक व्यवहार नहीं कहा जाएगा, गांधी के अनुसार तो अगर दूसरे की रक्षा के लिए अपना बलिदान करना पड़े तो इसमें सच्चा सत्याग्रही चूकेगा नहीं।

गांधी की अहिंसा की यह व्याख्या भारतीय दर्शन के मूल सिद्धांतों पर आधारित है। उपनिषदों, पुराणों, जैन और बौद्ध धर्म में अहिंसा की जो बात कही गई थी, उसे गांधी ने व्यापक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया। "हिंसा न करना" के सीमित दायरे से आगे बढ़ाकर उन्होंने अहिंसा सिद्धांत को सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन का आधार बनाया। टॉलस्टॉय, प्रिंस क्रोपाटकिन, रस्किन रूसो आदि पाश्चात्य विचारकों के सिद्धांतों के संपर्क में आकर गांधी ने एक साधारण नैतिक सिद्धांत को, एक महत्वपूर्ण दार्शनिक रूप प्रदान कर दिया।

उनके अनुसार अहिंसा नकारात्मक भी हो सकती है और सकारात्मक भी। अगर हम विरोधी से भयभीत होकर अहिंसक बने रहें तो यह सिर्फ नकारात्मक अहिंसा है, जिसे कायरता कहा जाना चाहिए। सकारात्मक अहिंसा का जन्म तो आत्मिक बल से होता है, भय से नहीं। हम तभी सच्चे अर्थ में अहिंसक हैं, यदि हिंसा कर सकने की स्थिति में भी हम ऐसा न करें ;क्योंकि हिंसा से जो कार्य हम करना चाहते हैं, वह नहीं कर पाएंगे, "हमको पाप से लड़ना है, पापी से नहीं"। [9] पापी तो चाहे वह कितना ही बड़ा पापी क्यों न हो, मनुष्य ही है, उसके अंदर भी इस ईश्वर का वह अंश मौजूद है, जिसे हम सत्य कहते हैं।हमको तो पापी के अंदर विद्यमान किंतु आच्छादित, इस तत्व को उजागर करना है, उसका हृदय परिवर्तन करना है।

अहिंसा की ऐसी व्याख्या के कारण गांधी के जीवन काल में ही कई लोग उनसे सहमत नहीं थे। जब चौरीचौरा कांड के कारण असहयोग आंदोलन को उन्होंने वापस लिया तो उनका भारी विरोध हुआ। किंतु उन्होंने हर परिस्थिति में अपनी अंतरात्मा की आवाज को सुना। लगभग *50* वर्ष के सक्रिय राजनीतिक जीवन को उन्होंने सत्य और अहिंसा के बल पर जीया। सत्य और अहिंसा के आधार पर अपने आंदोलन को आगे बढ़ाया और अंत में मनसा-वाचा -कर्मणा सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए अपने जीवन मूल्यों के लिए अपना बलिदान दिया। आज की सबसे बड़ी समस्या यह है कि सत्य और अहिंसा जैसे शब्द सिर्फ कथनी में रह गये हैं, करनी में तो झूठ और हिंसा ही व्यवहार में लाया जा रहा है। जब गांधी दर्शन की प्रासंगिकता का सवाल उठाया जाता है तो एक बात ध्यान रखनी चाहिए कि जब तक सत्य और अहिंसा का जीवन नहीं जीया जाएगा, तब तक यह सवाल बेमानी रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुण्डक-उपनिषद के सर्वज्ञात मंत्र *3.1.6*
2. महाभारत, अनुशासन पर्व
3. आइंस्टीन
4. 'गांधी, नेहरू, टैगोर और आंबेडकर'डॉ. एमसी जोशी, अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृ.*17*
5. ईशोपनिषद *1.*
6. 'गांधी, नेहरू, टैगोर और आंबेडकर'डॉ. एमसी जोशी, अभिव्यक्ति प्रकाशन, पृ*18.*
7. गीता, द्वितीय अध्याय, *16*वां श्लोक.
8. गांधी-सत्य के प्रयोग
9. गांधी